© 2017 IJSRSET | Volume 3 | Issue 8 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099

पुष्टि सिद्धान्त में प्रतिपादित 'मुक्ति'

अदिति पाण्डेय
शोधच्छात्रा, संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

भारतीय दर्शन की समीक्षा का केन्द्र विद्धानों ने सदैव ही मोक्ष की संकल्पना में सन्निहित किया है। मुक्ति और दःखत्रय से निवृत्ति की इसी धारणा ने अनेक मतवादों को जन्म दिया। मुकित या मोक्ष से तात्पर्य जीव का समस्त सांसारिक बन्धनों से और तदजन्य कष्टों से एकान्तिक और आत्यन्तिक दुःखाभाव को सिद्ध कर मुक्त हो जाना ही मोक्ष है– 'मुच्यते सर्वैर्दुःखबन्धनैर्यत्र स मोक्षः', अथवा साधक का ज्ञाता–ज्ञान–ज्ञेय की त्रिपुटी से शून्य होकर मात्र चित्स्वरूप हो जाना शास्त्रानुसार यही मुक्ति/मोक्ष है।

ज्ञात है कि षडदर्शनों में परिगणित वेदान्त दर्शन के आधाराष्म रूप में प्रतिष्ठित शा🕐रमत में ज्ञानसाध्य जीव ब्रहमैक्य रूप मुक्ति का प्रतिपादन किया गया है। दृष्टान्तस्वरूप कठोपनिषद् पर भाष्य करते हुए आचार्य श🕐र स्वतः स्पष्ट करते हैं–

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः।

स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूमो न जायते।। 1/3/8

अर्थात जो सदा विवेकशील बुद्धि से मुक्त संयतचित्त पवित्र रहता है वह तो उस परम पद को प्राप्त कर लेता है जहाँ से वे पुनः जन्म नहीं लेता।[*1] इस प्रकार जो इन्द्रियों के द्वारा भगवान् की आज्ञा के अनुसार पवित्र कर्मों का निष्काम भाव से शरीर निर्वाह के लिये भोग करता है वह परमेश्वर के उस परमधाम को प्राप्त कर लेता है, जहाँ से फिर लोटना नहीं होता।

वैष्णव मत में मोक्ष उक्त संकल्पना तक ही सीमित नहीं है अपितु अपने साध्य का संधान करते हुए विषयी और विषय की पृथक समीक्षा और समावेशी दृष्टिकोण प्रतिपादित करता है। श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में कहा गया है–बन्धोऽस्याविद्ययानादिः[*2] अविद्या के द्वारा जीव का

*शोधच्छात्रा, संस्कृत–विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

बन्धन होता है जो कि अनादि है। इस प्रकार जीव में होने वाला कर्तव्य भौक्तृत्व, सुख–दुःख आदि सभी अविद्या कल्पित ही है।[*3] जब साधक इस अनात्मभाव का परित्याग कर अपने परमानन्द स्वरूप में अवस्थित हो जाता है इसे ही मुक्ति कहते हैं।

वल्लभ दर्शन में भक्ति यद्यपि मुक्ति का साधन है जहाँ जागतिक समस्त बन्धनों का उच्छेद हो जाता है व कर्मकाण्ड का पथ अनुपेक्षित हो जाता है तथा साधक श्रद्धावनत होकर मात्र भक्ति भाव से परमानन्द परमेश्वर की प्राप्ति हेतु उद्यत हो जाता हे। तदर्थ साधक हेतु भगवान् के प्रसन्नार्थ मात्र पत्र पुष्प ही प्रासंगिक सिद्ध किये गये हैं– 'पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो में भक्त्या प्रयत्छति।'[*5]

आचार्य बालकृष्ण 'निर्णयार्णव' के द्वितीयस्तर में वर्णित मुक्ति का उल्लेख करते हुए कहते हैं–यथाधिकारबोधायय सर्वां लीलाः फलावधि। मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थिति :।।[*6]

इस प्रकार 'मुक्ति' का मूल लक्ष्य पुष्टि सिद्धान्त में शरणागति को ही सिद्ध किया गया है, जो एकमात्र श्री हरि ही है।, ओर यह तभी सम्भव है जब अविद्याजन्य पचुविध देहाध्यास इन्द्रियाध्यास, प्राणाध्यास, अन्तःकरणाध्यास की निवृत्ति हो जाय।[*7] श्रीमद्भागवत में प्रस्तुत तथ्य का प्रतिपादन अत्यन्त सुन्दर प्रकार से किया गया है। जहाँ कहा गया है–कि उन्होंने अनायास ही पृथ्वी में अपनी कीर्ति का विस्तार कर दिया, जिसका सुकवियों ने बड़ी ही सुन्दर भाषा में वर्णन किया है। वह इसलिए कि मेरे चले जाने के बाद लोग मेरी इस कीर्ति का गान, श्रवण और स्मरण करके इस अज्ञान रूप अन्धकार से सुगमता पार हो जायँगे। इसके बाद परमैश्वर्यशाली भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने धाम को प्रयाण किया।[*8] मुकित के इसी भगवद्स्वरूप की अनुशंसा आचार्य बालकृष्ण भी करते हुए कहते हैं कि– अतो यथा रूपं मोचकं तथा

नामापि मोच्कम् इति

उभयोः तौत्यं प्रतिपादितं।।[*9]

अर्थात जिस प्रकार भगवान् का विग्रह रूप मुक्ति को प्रदान कराने वाला है उसी प्रकार भगवान नाम–रूप, पुराण भागवतादि मोक्ष दायक है। जब साधक को मुक्ति के पश्चात् भी परमतत्व का आश्रय प्राप्त हो जाता है तब जीव अज्ञानकल्पित कर्तव्य भोक्तृत्व आदि अनात्म भाव का त्याग करके अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है यही मुक्ति है–

मुक्तिहिंत्वान्यशारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः।[*10]

उपयुक्त मुक्ति का स्वरूप मोक्ष के विविध आयामों का भी निदर्शन करता है। चूंकि मुक्तावस्था में जीव किस परमानन्द का अनुभव करता है वह पुष्टि भक्त के लिए ऐसी रसात्मक अनुभूति है जो अद्वयानन्द को उत्पन्न करती है। जहाँ भक्ति के साधन तथा भगवान की दिव्य कृपा के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति 'जीव' को होती है उस अवस्था में वह शुद्ध–जीव ब्रह्म ही हो जाता है।[*11] साथ ही कुछ शुद्ध पुष्टि भक्तों को भगवद्कृपा के अनुरूप 'नित्यलीला प्रवेश' रूप मुक्ति की प्राप्ति होती है वस्तुतः यह 'नित्यलीला प्रवेश' ही उनका 'मोक्ष' है। इसके अतिरिक्त ज्ञानमार्गीय या मर्यादामार्गीय जीवों को वेदोक्त कर्मों के अनुसरण रूप चतुर्विध मुक्ति की प्राप्ति होती है और उनको होने वाली यह अक्षर ब्रह्म की संसिद्धि ही मोक्ष कही गयी है। भगवान स्पष्ट कहते हैं कि भक्त मेरी सेवा को छोड़कर सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सायुज्य मोक्ष को भी स्वीकार नहीं करते, चूंकि वल्लभ मत के अनुसार जीव मुक्तावस्था में भी कार्यरत रहते हैं।[*11] जिसका यथातथ्य प्रतिपादन आचार्य सुबोधिनी की व्याख्या में करते हैं–

सालोक्यं वेकुण्ठेवासः सार्ष्टि समानैश्वर्यम्
सामीप्यं भगवत्समीपेस्थितिः, सालोक्येऽव्ययं विशेषः।
सारूप्यं स्वस्यापि चतुर्भुजत्वम्, एकत्वं सायुज्यं
उतेतितस्य मुख्य फलत्वं ज्ञापयति।। 11/29/13 सु0

सालोक्य मुक्ति से तात्पर्य है बैकुण्ठ में भगवान के समान वास व उनके सतत् दर्शन होते रहने से है, यथा भागवत के एक प्रस🕐 में गोपियों द्वारा भगवद्स्वरूपानुभव करते हुए उन्हें नित्य समीधस्थ प्रदर्शित किया गया है–

तं कांचिन्नेत्ररन्ध्रेण हृदि कृत्वा निमील्य च।
पुलकांग्युपगुहयास्ते योगीवानन्दसंप्लुता।।

सामीप मुक्ति में जीव परमात्मा के अत्यन्त समीप रहकर तद्जन्य ऐश्वर्य व सुख की अनुभूति करता है। मुक्ति के तृतीय भेद, सारूप्य मुक्ति में जीव भगवान के समान रूप धारण करता है जबकि सायुज्य मुक्ति के अन्तर्गत मुक्तात्मा परमात्मा के सारे भोगों का उपयोग करता है–

लोकेषु विष्णोर्निवसन्ति केचित्।
समीपमिच्छन्ति च केचिदन्ये।
अन्ये रूपं सदृशं भजन्ये
सायुज्यंमन्ये स तु मोक्षन्उक्तः।।– भाष्यदर्पण

उल्लेखनीय है कि मोक्ष या मुक्ति की संकल्पना का लक्ष्य मूलतः ज्ञानमार्गीय या मर्यादामार्गीय साधकों की दृष्टि से अपने मत का विभेद प्रदश्रित करने हेतु व पुष्टि सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिये किया गया है।[*12] वास्तव में तो वल्लभ मत में मुक्ति या परमानन्द की प्राप्ति स्वर्ग व अपवर्ग से परे है।[*13] इसका स्पष्टीकरण गिरिधर महाराज 'शुद्धाद्वैतमार्तण्ड' में भी देते हैं–

अलौकिकाऽऽर सिद्धये प्रवेशो हरिणोदितः।[*14]

अतएव स्पष्ट होता है कि सभी मुक्तियाँ स्वयं द्वारा चयनित मार्ग/ साधन या भगवद्वरण व भगवद्भक्ति के फलस्वरूप ही होती है। परब्रह्म पुरूषोत्तम श्री हरि को तो भक्ति ही अत्यन्त प्रिय है तथा उसकी प्राप्ति का एकमात्र साधन साध्यरूपा निष्काम अनन्य भक्ति द्वारा ही सम्भव है। श्रीमद्भागवत के एकादश स्कन्ध में भगवान् कहते हैं–

मधदिष्टतमं लोके यच्चापि प्रियात्मनः.....तन्तन्निवेदयेन्मह्यम्।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. कठोपनिषद्–1/3/8–ईशादि नौ उपनिषद्–गीता प्रेस गोरखपुर।
2. श्रीमद्भागवत–11/11/4
3. (i) तत्व दीपनिबन्ध –शास्त्रार्थप्रकरण का0 23 स्नेहपूरणी व्याख्या पृ087

   (ii) यदिदं मनसा वाचा चक्षुर्भ्यां श्रवणादिभिः।

   नश्वरं गृहयमाण❸ विद्धि मायामनोमयम् ।। 11/7/7 एवं 11/19/7

   (iii) 'स्वप्नाभामस्तधिषणं पुरूेदुःखदुःखम्' – 10/14/22/
4. गुरूदेव आश्रम पत्रिका बम्बई– डां0 मदनमोहन अग्रवाल–1980
5. श्रीमद्भागवद्गीता–9/26
6. कारिका 5 निर्णयार्णव द्वितीयस्तर①– आचार्य बालकृष्ण–पृ0 148
7. बालकृष्ण ग्रन्थावली पृ0 15
8. आच्छिध कीर्तिं सुश्लोकां वितत्य ह्युसा नु कौ।

   तमोऽनया तरिष्यन्तीत्यगात् एवं पदमीश्वरः ।।11/1/7
9. बालकृष्ण ग्रन्थावली पृ0 149
10. श्रीमद्भागवत–2/10/6

11. बल्लभ का दर्शन राधारानीसुखवाला–पृ0 132

12. अणुभाष्य–ब्रह्मसूत्र 4/1/17

13. शास्त्रार्थप्रकरण कारिका 45–46

14. शुद्धाद्वैत–मार्तण्डः–कारिका 85–86–आचार्य गिरिधर महाराज